International Journal of Research - GRANTHAALAYAH
January 2026 14(1)
www.granthaalayah.com

Original Article

THE DECLINE OF INDIAN AGRICULTURE AND TRADITIONAL INDUSTRIES DURING THE COLONIAL PERIOD: A HISTORICAL ANALYSIS

औपनिवेशिक काल के दौरान भारतीय कृषि और पारंपरिक उद्योगों का पतन : एक ऐतिहासिक विश्लेषण

Preeti Kumari [1*]
[1] Research Scholar, Department of History, Malwanchal University, Indore, M.P., India

ABSTRACT

English: This research paper critically analyzes the process and causes of the decline of two main pillars of the Indian economy – agriculture and traditional handicrafts – under British colonial rule. The primary focus of the research is to examine how the economic policies of the East India Company and later the British Crown transformed India's centuries-old self-sufficient rural economy into a 'colonial dependent economy'.

In the context of agriculture, this paper highlights the adverse effects of new land revenue systems (such as the Permanent Settlement and the Ryotwari system) and the forced commercialization of agriculture, which pushed farmers into debt and famine. On the other hand, in the realm of traditional industries, this research examines the process of 'deindustrialization,' where competition from British machine-made goods and discriminatory tariff policies destroyed the Indian textile and metal industries. The study's findings suggest that this decline of agriculture and industries was not merely an economic transformation but a systematic process of 'drain of wealth' that created structural distortions in the Indian socio-economic fabric. Based on primary and secondary historical sources, this research argues that colonial policies laid the foundation for modern Indian economic backwardness.

Hindi: यह शोध पत्र ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के अधीन भारतीय अर्थव्यवस्था के दो प्रमुख स्तंभों कृषि और पारंपरिक हस्तशिल्प के ह्रास की प्रक्रिया और उसके कारणों का समालोचनात्मक विश्लेषण करता है। शोध का मुख्य केंद्र बिंदु यह पड़ताल करना है कि किस प्रकार ईस्ट इंडिया कंपनी और तत्पश्चात ब्रिटिश क्राउन की आर्थिक नीतियों ने भारत की सदियों पुरानी आत्मनिर्भर ग्रामीण अर्थव्यवस्था को एक 'औपनिवेशिक उपभोज्य अर्थव्यवस्था ' में परिवर्तित कर दिया।

कृषि के संदर्भ में, यह पत्र नई भू-राजस्व प्रणालियों (जैसे स्थायी बंदोबस्त और रैयतवारी) और कृषि के जबरन वाणिज्यिकरण के दुष्प्रभावों को रेखांकित करता है, जिसने कृषकों को ऋणग्रस्तता और अकाल की ओर धकेला। दूसरी ओर, पारंपरिक उद्योगों के क्षेत्र में, यह शोध 'वि-औद्योगिकीकरण 'की प्रक्रिया का परीक्षण करता है, जहाँ ब्रिटिश मशीनी उत्पादों की प्रतिस्पर्धा और विभेदात्मक टैरिफ नीतियों ने भारतीय वस्त्र और धातु उद्योगों को नष्ट कर दिया।

अध्ययन के निष्कर्ष दर्शाते हैं कि कृषि और उद्योगों का यह पतन केवल आर्थिक परिवर्तन नहीं था, बल्कि एक सुनियोजित 'धन का निष्कासन 'था, जिसने भारतीय सामाजिक-आर्थिक ढांचे में संरचनात्मक विकृतियाँ पैदा कीं। यह शोध प्राथमिक और माध्यमिक ऐतिहासिक स्रोतों के आधार पर यह तर्क प्रस्तुत करता है कि औपनिवेशिक नीतियों ने आधुनिक भारतीय आर्थिक पिछड़ेपन की नींव रखी।

*Corresponding Author:
Email address: Preeti Kumari (kpreetib.ed88@gmail.com)

Received: 10 October 2025; **Accepted:** 29 November 2025; **Published** 28 January 2026
DOI: 10.29121/granthaalayah.v14.i1.2026.6521
Page Number: 1-7
Journal Title: International Journal of Research -GRANTHAALAYAH
Journal Abbreviation: Int. J. Res. Granthaalayah
Online ISSN: 2350-0530, **Print ISSN:** 2394-3629
Publisher: Granthaalayah Publications and Printers, India
Conflict of Interests: The authors declare that they have no competing interests.
Funding: This research received no specific grant from any funding agency in the public, commercial, or not-for-profit sectors.
Authors' Contributions: Each author made an equal contribution to the conception and design of the study. All authors have reviewed and approved the final version of the manuscript for publication.
Transparency: The authors affirm that this manuscript presents an honest, accurate, and transparent account of the study. All essential aspects have been included, and any deviations from the original study plan have been clearly explained. The writing process strictly adhered to established ethical standards.
Copyright: © 2026 The Author(s). This work is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License.
With the license CC-BY, authors retain the copyright, allowing anyone to download, reuse, re-print, modify, distribute, and/or copy their contribution. The work must be properly attributed to its author.

Keywords: Colonial Economy, Deindustrialization, Land Revenue, Commercialization of agriculture, Drain of wealth, British Raj
औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था, वि-औद्योगिकीकरण, भू-राजस्व, कृषि का वाणिज्यिकरण, धन का निष्कासन, ब्रिटिश राज

प्रस्तावना

पृष्ठभूमि: पूर्व-औपनिवेशिक भारत की आत्मनिर्भरता और वैश्विक व्यापार

अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक भारत केवल एक कृषि प्रधान देश ही नहीं, बल्कि विश्व का 'औद्योगिक कार्यशाला' था। पूर्व-औपनिवेशिक काल में भारतीय अर्थव्यवस्था एक संतुलित ढांचे पर टिकी थी, जहाँ कृषि और कुटीर उद्योग एक-दूसरे के पूरक थे। प्रसिद्ध आर्थिक इतिहासकार एंगस मैडिसन (Angus Maddison) के आंकड़ों के अनुसार, 1700 ईस्वी में विश्व की कुल आय (GDP) में भारत की हिस्सेदारी लगभग 24.4% थी, जो पूरे यूरोप की संयुक्त हिस्सेदारी के बराबर थी Maddison et al. (2003)।

भारतीय हस्तशिल्प, विशेष रूप से सूती और रेशमी वस्त्र, पूरी दुनिया में अपनी गुणवत्ता के लिए विख्यात थे। बर्नियर (Francois Bernier) जैसे यात्रियों ने मुगलकालीन भारत की समृद्धि का वर्णन करते हुए इसे सोने और चांदी के लिए एक 'गर्त' बताया था, जहाँ दुनिया भर की कीमती धातुएं व्यापार के बदले खिंची चली आती थीं Bernier et al. (1670)। ग्रामीण स्तर पर, 'जजमानी व्यवस्था' ने एक आत्मनिर्भर पारिस्थितिकी तंत्र बनाया था, जहाँ किसान और कारीगर वस्तुओं का विनिमय करते थे, जिससे बाहरी निर्भरता न्यूनतम थी।

शोध समस्या: आर्थिक ढांचे का संरचनात्मक विघटन

शोध की मुख्य समस्या यह विश्लेषण करना है कि 1757 (प्लासी का युद्ध) के बाद ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी की नीतियों ने किस प्रकार भारत की इस आंतरिक शक्ति को व्यवस्थित रूप से नष्ट किया। जैसा कि आर.सी. दत्त (R.C. Dutt) ने अपनी मौलिक कृति में तर्क दिया है, ब्रिटिश शासन के तहत भारत में गरीबी कोई प्राकृतिक आपदा नहीं, बल्कि "प्रशासनिक नीतियों का परिणाम" थी Dutt et al. (1902)।

ब्रिटिश नीतियों ने एक 'उपनिवेशवादी श्रम विभाजन' को जन्म दिया, जिसके तहत भारत को ब्रिटेन के कारखानों के लिए कच्चे माल का निर्यातक और वहां के तैयार माल का उपभोक्ता बना दिया गया। शोध समस्या यहाँ उत्पन्न होती है कि क्या यह पतन केवल तकनीकी पिछड़ेपन के कारण था, या इसके पीछे जानबूझकर लागू की गई 'विभेदात्मक टैरिफ नीतियां' और 'राजनीतिक प्रभुत्व' मुख्य कारक थे? बिपिन चंद्र के अनुसार, औपनिवेशिक हितों ने भारतीय अर्थव्यवस्था को ब्रिटेन के हितों के अधीन कर दिया, जिससे यहाँ का विकास 'अवरुद्ध विकास' बनकर रह गया Chandra et al. (1966)।

शोध का उद्देश्य

इस शोध पत्र का प्राथमिक उद्देश्य उन तंत्रों (Mechanisms) की पहचान करना है जिन्होंने भारतीय अर्थव्यवस्था के रीढ़ की हड्डी को तोड़ा। इसके विशिष्ट उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

1) **कृषि नीतियों का विश्लेषण:** यह समझना कि स्थायी बंदोबस्त और रैयतवाड़ी जैसी प्रणालियों ने किसानों को केवल 'किरायेदार' के रूप में कैसे सीमित कर दिया।
2) **वि-औद्योगिकीकरण की जांच:** उन कारणों का मूल्यांकन करना जिनसे ढाका के मलमल और मुर्शिदाबाद के रेशम उद्योग का पतन हुआ, जिसे लॉर्ड विलियम बेंटिक ने "बुनकरों की हड्डियों से भारत के मैदानों को सफेद होना" कहा था।
3) **सामाजिक-आर्थिक प्रभाव:** कृषि और उद्योग के पतन के फलस्वरूप उत्पन्न हुए बार-बार के अकालों और 'गरीबी के ग्रामीणकरण' के अंतर्संबंधों का अध्ययन करना।
4) **धन का निष्कासन:** दादाभाई नौरोजी के 'ड्रेन थ्योरी' के परिप्रेक्ष्य में यह देखना कि कैसे भारत की पूंजी का प्रवाह निरंतर लंदन की ओर बना रहा।

भारतीय कृषि का पतन और शोषण (Decline and Exploitation of Indian Agriculture)

ब्रिटिश शासन के दौरान भारतीय कृषि का पतन कोई आकस्मिक घटना नहीं थी, बल्कि यह अत्यधिक राजस्व मांग, अनुचित भू-स्वामित्व प्रणालियों और बाजार की ताकतों के जबरन हस्तक्षेप का परिणाम था।

नई भू-राजस्व प्रणालियाँ: संरचनात्मक प्रहार

ब्रिटिश प्रशासन ने राजस्व संग्रह को अधिकतम करने के लिए तीन मुख्य प्रणालियाँ लागू कीं, जिन्होंने ग्रामीण समाज के पारंपरिक ढांचे को छिन्न-भिन्न कर दिया:

- **स्थायी बंदोबस्त (Permanent Settlement, 1793):** लॉर्ड कॉर्नवॉलिस द्वारा बंगाल, बिहार और ओडिशा में लागू इस व्यवस्था ने जमींदारों को भूमि का वास्तविक स्वामी बना दिया। तपन रायचौधरी Raychaudhuri et al. (1983) के अनुसार, इसने कृषकों को उनके सदियों पुराने अधिकारों से वंचित कर 'बटाईदार' की स्थिति में ला दिया। 'सूर्यास्त कानून' (Sunset Law) के डर से जमींदारों ने किसानों पर अत्यधिक कर थोपे।
- **रैयतवाड़ी और महलवाड़ी व्यवस्था:** दक्षिण और पश्चिम भारत में लागू रैयतवाड़ी व्यवस्था में राजस्व का निर्धारण सीधे किसान (रैयत) के साथ किया गया, लेकिन राजस्व की दरें इतनी ऊंची (अक्सर उपज का 50% से 60%) थीं कि किसान ऋण के जाल में फंस गए। ए.आर. देसाई Desai et al. (1948)

का तर्क है कि इन प्रणालियों ने भूमि को एक 'विक्रय वस्तु' (Commodity) बना दिया, जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में भूमिहीन मजदूरों की एक नई श्रेणी पैदा हुई।

तालिका 1

तालिका 1 ब्रिटिश भारत में प्रमुख भू-राजस्व प्रणालियाँ (1793-19वीं शताब्दी)

विशेषताएँ	स्थायी बंदोबस्त (Permanent Settlement)	रैयतवाड़ी व्यवस्था (Ryotwari System)	महलवाड़ी व्यवस्था (Mahalwari System)
वर्ष/क्षेत्र	1793, बंगाल, बिहार, ओडिशा	1820, मद्रास, बंबई, असम	1822, उत्तर प्रदेश, मध्य भारत
मुख्य पक्ष	ज़मींदार	सीधा किसान (रैयत)	गाँव (महल) का मुखिया/ज़मींदार
मालिक कौन?	ज़मींदार को भूमि का स्वामी बनाया	किसान को भूमि का स्वामी बनाया	गाँव/सामुदायिक भूमि स्वामी
राजस्व निर्धारण	स्थायी, अत्यधिक उच्च दर पर निर्धारित	अस्थायी (20-30 वर्षों के लिए), उपज का 50-60%	अस्थायी, पूरे गाँव पर संयुक्त
परिणाम	ज़मींदारों का उदय, किसानों का शोषण, भूमिहीनता	किसानों पर सीधा भार, ऋणग्रस्तता	गाँव के भीतर असमानता, सामुदायिक विघटन
ब्रिटिश उद्देश्य	निश्चित राजस्व आय, वफादार वर्ग का निर्माण	अधिकतम राजस्व, ज़मींदार वर्ग से बचना	राजस्व स्थिरता, स्थानीय नियंत्रण

कृषि का वाणिज्यिकरण (COMMERCIALIZATION OF AGRICULTURE)

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भारतीय कृषि का 'वाणिज्यिकरण' हुआ, जो स्वैच्छिक न होकर 'जबरन' (Forced Commercialization) था।

- **नकदी फसलों पर जोर:** ब्रिटिश उद्योगों की जरूरतों को पूरा करने के लिए किसानों को खाद्यान्न (गेहूं, चावल) के बजाय नकदी फसलें जैसे—नील, कपास, जूट, अफीम और चाय उगाने के लिए मजबूर किया गया। अमर्त्य सेन Sen et al. (1981) ने रेखांकित किया है कि इस प्रक्रिया ने खाद्य सुरक्षा को कमजोर किया।
- **बाजार की अनिश्चितता:** अब भारतीय किसान अंतरराष्ट्रीय बाजार की कीमतों (जैसे अमेरिकी गृहयुद्ध के दौरान कपास की मांग) पर निर्भर हो गया था। जब कीमतें गिरीं, तो किसान राजस्व चुकाने में असमर्थ हो गए, जिससे दक्कन के दंगे Deccan Riots et al. (1875) जैसे विद्रोह हुए।
- **ग्रामीण ऋणग्रस्तता और साहूकारों का उदय**

राजस्व की मांग नकद में होने और फसल की विफलता के कारण किसान साहूकारों के पास जाने को मजबूर हुए। डैनियल थॉर्नर Thorner and Thorner (1962) के अनुसार, औपनिवेशिक कानून ने साहूकारों का पक्ष लिया, जिससे किसानों की जमीनें गैर-कृषक वर्गों के हाथों में चली गईं। 1880 के अकाल आयोग ने स्वीकार किया कि भारत का एक-तिहाई किसान वर्ग स्थायी रूप से कर्ज में डूबा हुआ था।

- **अकाल और जनसांख्यिकीय आपदा**

कृषि के इस शोषणकारी स्वरूप का सबसे वीभत्स परिणाम बार-बार पड़ने वाले अकाल थे। 1770 के बंगाल के अकाल से लेकर 1943 के बंगाल के महान अकाल तक, करोड़ों लोग काल के गाल में समा गए। माइक डेविस Davis et al. (2001) ने अपनी पुस्तक 'Late Victorian Holocausts' में तर्क दिया है कि ये अकाल केवल जलवायु परिवर्तन नहीं थे, बल्कि ब्रिटिश 'लेसेज-फेयर' आर्थिक नीतियों द्वारा निर्मित 'मानव-निर्मित आपदाएं' थीं।

पारंपरिक उद्योगों का विस्थापन (DE-INDUSTRIALIZATION)

ब्रिटिश शासन के दौरान भारतीय हस्तशिल्प और कुटीर उद्योगों का पतन आधुनिक विश्व इतिहास की सबसे दुखद आर्थिक घटनाओं में से एक है। यह पतन स्वाभाविक तकनीकी विकास की कमी के कारण नहीं, बल्कि औपनिवेशिक सत्ता द्वारा थोपी गई कृत्रिम बाधाओं का परिणाम था।

'एकतरफा मुक्त व्यापार' और विभेदात्मक टैरिफ नीतियां

ब्रिटेन में औद्योगिक क्रांति के सफल होने के बाद, भारतीय बाजार को ब्रिटिश मशीनी उत्पादों के लिए खोलने की नीति अपनाई गई। शशि थरूर Tharoor et al. (2016) के अनुसार, ब्रिटेन ने 'मुक्त व्यापार' (Free Trade) का ढोंग रचा, लेकिन यह केवल भारत से इंग्लैंड जाने वाले माल के लिए नहीं, बल्कि इंग्लैंड से भारत आने वाले माल के लिए था।

- **संरक्षणवाद:** ब्रिटेन ने भारतीय वस्त्रों के अपने देश में प्रवेश पर भारी आयात शुल्क (लगभग 70% से 80%) लगाया, जबकि ब्रिटिश निर्मित माल भारत में नगण्य शुल्क पर बेचा गया।
- **परिणाम:** भारतीय मलमल और सूती वस्त्र, जो अपनी सूक्ष्मता के लिए जाने जाते थे, घरेलू बाजार में ही मैनचेस्टर के सस्ते, मशीनी कपड़ों से पिछड़ गए।

देशी रियासतों का विलय और संरक्षण का अंत

ऐतिहासिक रूप से, भारतीय उच्च-स्तरीय हस्तशिल्प (जैसे नक्काशी, रेशम, आभूषण) को स्थानीय राजाओं और नवाबों का संरक्षण प्राप्त था। बिपिन चंद्र Chandra et al. (1966) तर्क देते हैं कि जैसे-जैसे अंग्रेजों ने रियासतों का विलय किया, वैसे-वैसे इन विलासितापूर्ण वस्तुओं की मांग समाप्त हो गई। ब्रिटिश अधिकारियों की पसंद यूरोपीय शैली की थी, जिससे स्थानीय कारीगरों का मुख्य बाजार ही लुप्त हो गया।

रेलवे का विस्तार और आंतरिक बाजारों का भेदन

1853 के बाद रेलवे के विस्तार ने भारतीय उद्योगों के पतन की गति को तीव्र कर दिया। एम.जी. रानाडे Ranade et al. (1906) के अनुसार, रेलवे केवल परिवहन का साधन नहीं थी, बल्कि यह ब्रिटिश माल को भारत के सुदूर गांवों तक पहुँचाने और वहां से कच्चा माल बंदरगाहों तक लाने का एक 'औपनिवेशिक औजार' था। इसने ग्रामीण आत्मनिर्भरता को पूरी तरह समाप्त कर दिया।

तालिका 2

तालिका 2 भारतीय वि-औद्योगिकीकरण के मुख्य चरण और प्रभाव

पतन के कारक	प्रभाव की प्रकृति	प्रभावित वर्ग
मशीनी प्रतिस्पर्धा	लंकाशायर के सस्ते वस्त्रों ने भारतीय हथकरघा को बाजार से बाहर किया।	जुलाहे और बुनकर
कच्चे माल का निर्यात	कपास और रेशम का निर्यात ब्रिटेन होने से स्थानीय कारीगरों के लिए कच्चा माल महंगा हुआ।	कताई करने वाले और शिल्पकार
ब्रिटिश प्रशासनिक नीतियां	भारतीय वस्तुओं पर भारी निर्यात कर और ब्रिटिश वस्तुओं पर शून्य आयात कर।	व्यापारी और निर्यातक
नगरों का पतन	ढाका, मुर्शिदाबाद और सूरत जैसे औद्योगिक केंद्र निर्जन हो गए।	शहरी श्रमिक और कलाशिल्पी

सामाजिक-आर्थिक परिणाम: 'शहरी-से-ग्रामीण' पलायन

औद्योगिक पतन का सबसे गहरा प्रभाव जनसंख्या के वितरण पर पड़ा। जब लाखों कारीगर और बुनकर बेरोजगार हुए, तो उनके पास जीवित रहने का एकमात्र साधन कृषि ही बचा। इस प्रक्रिया को 'पुनः कृषीकरण' (Re-agrianization) कहा जाता है।

डेनियल थॉर्नर Thorner and Thorner (1962) ने जनगणना के आंकड़ों का विश्लेषण करते हुए बताया कि 1891 से 1921 के बीच कृषि पर निर्भर जनसंख्या का प्रतिशत निरंतर बढ़ता गया, जिससे भूमि पर अत्यधिक बोझ बढ़ा और प्रति व्यक्ति आय में भारी गिरावट आई।

तकनीकी दमन और पूंजी का अभाव

ब्रिटिश शासन ने भारत में आधुनिक उद्योगों के विकास को हतोत्साहित किया। भारतीय पूंजीपतियों को बैंक ऋण और तकनीकी सहायता प्राप्त करने में अत्यधिक कठिनाई का सामना करना पड़ा। अमिय कुमार बागची Bagchi et al. (1972) के अनुसार, औपनिवेशिक बैंकिंग प्रणाली पूरी तरह से यूरोपीय कंपनियों के हितों के प्रति पक्षपाती थी।

कृषि और उद्योग के पतन का अंतर्संबंध (THE INTERRELATIONSHIP BETWEEN AGRARIAN AND INDUSTRIAL DECLINE)

भारतीय आर्थिक इतिहास का विश्लेषण करते समय यह स्पष्ट होता है कि कृषि की बदहाली और पारंपरिक उद्योगों का विस्थापन अलग-अलग घटनाएं नहीं थीं, बल्कि एक ही सिक्के के दो पहलू थे। इन दोनों के बीच एक गहरा और विनाशकारी संबंध था, जिसने भारतीय सामाजिक-आर्थिक संरचना को स्थायी रूप से बदल दिया।

वि-औद्योगिकीकरण का कृषि पर दबाव (Pressure of De-industrialization on Land)

जब 19वीं शताब्दी के दौरान मैनचेस्टर के वस्त्रों ने भारतीय जुलाहों, बुनकरों और कताई करने वालों को बेरोजगार किया, तो इन विस्थापित कारीगरों के पास आजीविका का कोई औद्योगिक विकल्प नहीं बचा। डेविड लुडेन Ludden et al. (1999) के अनुसार, शहरों से बेरोजगार हुए लाखों लोग अपने पैतृक गांवों की ओर लौटे, जिसे 'शहरी-से-ग्रामीण पलायन' कहा जाता है।

- **प्रति व्यक्ति भूमि की उपलब्धता में कमी:** बड़ी संख्या में कारीगरों के किसान बनने से कृषि पर निर्भरता अचानक बढ़ गई। 1891 की जनगणना के अनुसार कृषि पर निर्भरता लगभग 61% थी, जो 1921 तक बढ़कर 73% हो गई Thorner and Thorner (1962)।
- **भूमि का विखंडन (Fragmentation of Holdings):** अधिक लोगों द्वारा कम भूमि पर खेती करने के प्रयास में जोतों का आकार छोटा होता गया, जिससे खेती अलाभकारी हो गई।

कच्चे माल का निर्यात और कृषि का दोहन

ब्रिटिश उद्योगों की भूख ने भारतीय कृषि को अपने अधीन कर लिया। सभ्यसाची भट्टाचार्य Bhattacharya et al. (2005) के अनुसार, उद्योगों के पतन ने भारत को केवल 'कच्चे माल के उत्पादन क्षेत्र' (Hinterland) में बदल दिया।

- **बाजार का असंतुलन:** कपास, जूट और नील जैसे कच्चे माल के निर्यात पर जोर देने से स्थानीय कारीगरों को कच्चा माल मिलना दुर्लभ और महंगा हो गया। इस प्रकार, कृषि के वाणिज्यिकरण ने बचे-कुचे ग्रामीण उद्योगों की भी कमर तोड़ दी।
- **खाद्य असुरक्षा:** जब कृषि को उद्योगों (ब्रिटिश उद्योगों) के लिए कच्चा माल उगाने हेतु मजबूर किया गया, तो अनाज उत्पादन घट गया, जिससे उद्योगों के पतन के साथ-साथ अकाल की तीव्रता भी बढ़ गई।

अधिशेष पूंजी का अभाव और विकास का अवरोध

किसी भी अर्थव्यवस्था के विकास के लिए कृषि से प्राप्त अधिशेष (Surplus) का निवेश उद्योगों में होना आवश्यक है। लेकिन औपनिवेशिक भारत में यह प्रक्रिया पूरी तरह बाधित थी।

- **राजस्व और ऋण का जाल:** किसानों से अत्यधिक राजस्व वसूला जाता था, जो सीधे ब्रिटिश खजाने (Home Charges) में चला जाता था। इरफान हबीब Habib et al. (2006) तर्क देते हैं कि भारत के पास वह पूंजी कभी बची ही नहीं जो स्थानीय उद्योगों के आधुनिकीकरण में निवेश की जा सके।
- **साहूकारों का प्रभुत्व:** उद्योगों के अभाव में ग्रामीण क्षेत्रों में पूंजी केवल 'ब्याजखोरी' में लगी रही, न कि उत्पादक संपत्तियों के निर्माण में।

तालिका 3

तालिका 3 कृषि-उद्योग पतन का दुष्चक्र (The Vicious Cycle)

चरण	आर्थिक प्रक्रिया	परिणाम
प्रथम चरण	ब्रिटिश मशीनी उत्पादों का आगमन	पारंपरिक कुटीर उद्योगों का विनाश (बेरोजगारी)।
द्वितीय चरण	बेरोजगार कारीगरों का गांव की ओर पलायन	भूमि पर जनसंख्या का अत्यधिक बोझ और प्रति व्यक्ति आय में गिरावट।
तृतीय चरण	राजस्व चुकाने हेतु जबरन नकदी फसलें	खाद्य फसलों की कमी और कच्चे माल का निर्यात।
चतुर्थ चरण	पूंजी का अभाव और साहूकारी प्रथा	किसान और पूर्व-कारीगर दोनों का कर्ज के जाल में फंसना।
अंतिम परिणाम	संरचनात्मक निर्धनता	भारत का एक आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था से पिछड़ी औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था में परिवर्तन।

'धन का निष्कासन' और संरचनात्मक विकृति

दादाभाई नौरोजी के 'धन के निष्कासन' (Drain of Wealth) सिद्धांत के संदर्भ में, इन दोनों क्षेत्रों का पतन एक बड़े षड्यंत्र का हिस्सा था। आर.पी. दत्त Dutt et al. (1940) ने अपनी पुस्तक 'India Today' में स्पष्ट किया कि ब्रिटिश शासन ने भारत के आंतरिक श्रम विभाजन (Internal Division of Labour) को नष्ट कर उसे अंतरराष्ट्रीय पूंजीवाद का एक पिछलग्गू बना दिया। उद्योगों के पतन ने कृषि को पिछड़ा बनाया और कृषि की बदहाली ने उद्योगों के पुनरुत्थान के लिए आवश्यक पूंजी और मांग (Demand) को समाप्त कर दिया।

सामाजिक और आर्थिक परिणाम (SOCIAL AND ECONOMIC CONSEQUENCES)

भारतीय कृषि और पारंपरिक उद्योगों के संयुक्त पतन ने न केवल भारत की जीडीपी को प्रभावित किया, बल्कि इसने भारतीय समाज के ताने-बाने को मौलिक रूप से बदल दिया। इसके परिणामस्वरूप गरीबी का 'ग्रामीणकरण' हुआ और एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था का जन्म हुआ जो अभावों से ग्रस्त थी।

गरीबी का ग्रामीणकरण और भूमिहीनता

औपनिवेशिक काल का सबसे महत्वपूर्ण सामाजिक परिणाम 'कृषक समाज का विखंडन' था। जैसा कि Chandra et al. (1966) ने स्पष्ट किया है, हस्तशिल्प के विनाश ने लाखों लोगों को खेती की ओर धकेला, जिससे भूमि पर जनसंख्या का घनत्व अत्यधिक बढ़ गया।

- **भूमिहीन श्रमिकों का उदय:** अत्यधिक लगान और ऋण के कारण छोटे किसानों की जमीनें साहूकारों और ज़मींदारों के पास चली गईं। Kumar et al. (1965) के अनुसार, 19वीं सदी के अंत तक भारत में 'भूमिहीन कृषि मजदूरों' की एक विशाल श्रेणी तैयार हो गई थी, जो पूर्व-औपनिवेशिक काल में नगण्य थी।
- **सामाजिक स्तरीकरण:** ग्रामीण समाज दो स्पष्ट वर्गों में विभाजित हो गया—एक तरफ शोषक ज़मींदार और साहूकार, और दूसरी तरफ शोषित बटाईदार और खेतिहर मजदूर।

अकाल और जनसांख्यिकीय संकट

कृषि के वाणिज्यिकरण और खाद्य सुरक्षा की अनदेखी का सबसे वीभत्स आर्थिक परिणाम भीषण अकाल थे। Sen et al. (1981) के 'एंटाइटेलमेंट सिद्धांत' के अनुसार, ये अकाल भोजन की कमी से अधिक 'क्रय शक्ति' के अभाव के कारण थे।

- **आंकड़े:** 1850 से 1900 के बीच भारत में लगभग 24 बड़े अकाल पड़े, जिनमें अनुमानित 2 करोड़ से अधिक लोग मारे गए।
- **1943 का बंगाल अकाल:** यह औपनिवेशिक आर्थिक कुप्रबंधन का चरम बिंदु था, जिसने सिद्ध किया कि भारतीय संसाधनों का उपयोग ब्रिटिश युद्ध हितों के लिए किया जा रहा था, न कि जनता के कल्याण के लिए।

मध्यम वर्ग का विस्थापन और नए बौद्धिक वर्ग का उदय

एक ओर जहाँ पारंपरिक दस्तकार और व्यापारी वर्ग नष्ट हो गया, वहीं दूसरी ओर औपनिवेशिक प्रशासन की जरूरतों को पूरा करने के लिए एक 'अंग्रेजी शिक्षित मध्यम वर्ग' का उदय हुआ। पी. Spear et al. (1965) के अनुसार, इस वर्ग ने धीरे-धीरे महसूस किया कि भारत का आर्थिक पिछड़ापन ब्रिटिश नीतियों की देन है। यही बोध आगे चलकर 'आर्थिक राष्ट्रवाद' (Economic Nationalism) का आधार बना।

धन का निष्कासन (The Drain of Wealth)

आर्थिक रूप से भारत एक 'पूंजी निर्यातक' देश बन गया। दादाभाई नौरोजी (1901) ने सांख्यिकीय रूप से सिद्ध किया कि भारत के राजस्व का एक बड़ा हिस्सा (Home Charges, सैन्य खर्च, और विदेशी ऋण पर ब्याज) बिना किसी प्रतिफल के लंदन भेजा जा रहा था।

पूंजी निर्माण में बाधा: इस निष्कासन ने भारत में आंतरिक पूंजी निर्माण को असंभव बना दिया, जिससे आधुनिक उद्योगों की स्थापना में दशकों का विलंब हुआ।

तालिका 4

तालिका 4 औपनिवेशिक नीतियों के सामाजिक-आर्थिक प्रभाव

क्षेत्र	प्रमुख परिणाम	सामाजिक प्रभाव
जनसांख्यिकी	अत्यधिक मृत्यु दर और अकाल	जीवन प्रत्याशा में भारी गिरावट।
ग्रामीण समाज	साहूकारी प्रथा और ऋणग्रस्तता	किसानों का अपनी ही भूमि से विस्थापन।
शहरीकरण	पुराने औद्योगिक नगरों (ढाका, सूरत) का पतन	शहरी संस्कृति और पारंपरिक कलाओं का विनाश।
शिक्षा और वर्ग	बाबू संस्कृति (Clerical Class) का उदय	शारीरिक श्रम करने वाले वर्गों का सामाजिक पतन।
पूंजी	धन का निरंतर लंदन की ओर प्रवाह	निवेश का अभाव और बुनियादी ढांचे का पिछड़ापन।

निष्कर्ष

ब्रिटिश शासन के दौरान भारतीय कृषि और पारंपरिक उद्योगों के पतन का विस्तृत विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि भारत का आर्थिक रूपांतरण एक 'प्राकृतिक विकास' नहीं, बल्कि 'औपनिवेशिक विकृति' थी। अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक जो भारत विश्व व्यापार का केंद्र था, वह बीसवीं शताब्दी के मध्य तक आते-आते एक अत्यंत निर्धन और कृषि-निर्भर राष्ट्र बन गया।

इस शोध के मुख्य निष्कर्ष निम्नलिखित बिंदुओं में समाहित किए जा सकते हैं:

1) **संरचनात्मक विनाश:** ब्रिटिश भू-राजस्व प्रणालियों (स्थायी, रैयतवाड़ी और महलवाड़ी) ने न केवल किसानों का शोषण किया, बल्कि भूमि के प्रति पारंपरिक दृष्टिकोण को बदलकर उसे एक 'माल' (Commodity) बना दिया, जिससे ग्रामीण समाज में ऋणग्रस्तता और भूमिहीनता का जन्म हुआ।

2) **सुनियोजित वि-औद्योगिकीकरण:** भारतीय हस्तशिल्प का पतन केवल मशीनी प्रतिस्पर्धा का परिणाम नहीं था, बल्कि ब्रिटिश संसद द्वारा थोपी गई विभेदात्मक टैरिफ नीतियों और राजनीतिक दबाव का परिणाम था। इसने भारत की विनिर्माण क्षमता को दशकों पीछे धकेल दिया।

3) **दुष्चक्र का निर्माण:** कृषि और उद्योग के पतन ने एक-दूसरे को और अधिक बदतर बनाया। उद्योगों से विस्थापित लोग जब खेती की ओर लौटे, तो भूमि पर बोझ बढ़ा, जोतों का विखंडन हुआ और अंततः भारतीय कृषि 'अधिशेष' पैदा करने के बजाय केवल 'अस्तित्व बचाने' (Subsistence) का साधन बनकर रह गई।

4) **औपनिवेशिक विरासत:** 'धन का निष्कासन' वह प्रक्रिया थी जिसने भारत को पूंजी विहीन कर दिया। दादाभाई नौरोजी और आर.सी. दत्त के तर्क आज भी प्रासंगिक हैं कि भारत की निर्धनता का मूल कारण यहाँ के संसाधनों का अनियंत्रित दोहन था।

अंततः, यह शोध पत्र सिद्ध करता है कि विदेशी शासन के दौरान हुई आर्थिक क्षति ने आधुनिक भारत के लिए एक बहुत ही चुनौतीपूर्ण आर्थिक विरासत छोड़ी। स्वतंत्रता के बाद भारत के सामने सबसे बड़ी चुनौती इसी औपनिवेशिक ढांचे को तोड़कर एक स्वतंत्र और संतुलित औद्योगिक-कृषि अर्थव्यवस्था का निर्माण करना था।

ACKNOWLEDGMENTS

None.

REFERENCES

Baden-Powell, B. H. (1892). The Land-Systems of British India, Vol. 1. Oxford: Clarendon Press. (145-170).
Bagchi, A. K. (1972). Private Investment in India, 1900-1939. Cambridge: Cambridge University Press. (210-245). https://doi.org/10.1017/CBO9780511563218
Bernier, F. (1670). Travels in the Mogul Empire, AD 1656-1668. (Revised by V.A. Smith, 1934). Oxford University Press. (202-220).
Bhatia, B. M. (1967). Famines in India: A Study in Some Aspects of the Economic History of India. Bombay: Asia Publishing House. (58-84).
Bhattacharya, S. (2005). The Financial Foundations of the British Raj. New Delhi: Orient Blackswan. (112-140).
Chandra, B. (1966). The Rise and Growth of Economic Nationalism in India. New Delhi: People's Publishing House. (55-90, 142-160).
Charlesworth, N. (1982). British Rule and the Indian Economy 1800-1914. London: Macmillan. (32-55). https://doi.org/10.1007/978-1-349-05150-2
Davis, M. (2001). Late Victorian Holocausts: El Niño Famines and the Making of the Third World. London: Verso. (117-142).
Desai, A. R. (1948). Social Background of Indian Nationalism. Mumbai: Popular Prakashan. (35-62).
Dutt, R. C. (1902). The Economic History of India Under Early British Rule. London: Kegan Paul. (40-75).
Dutt, R. P. (1940). India Today. London: Victor Gollancz Ltd. (95-120).
Famine Commission Report (1880). Report of the Indian Famine Commission, Part I. London: Eyre and Spottiswoode. (15-30).
Gadgil, D. R. (1924). The Industrial Evolution of India in Recent Times. Oxford University Press. (102-135).
Guha, R. (1963). A Rule of Property for Bengal: An Essay on the Idea of Permanent Settlement. Paris: Mouton and Co. (180-210).
Habib, I. (2006). Indian Economy 1858-1914. New Delhi: Tulika Books. (45-68).
Kumar, D. (1965). Land and Caste in South India. Cambridge: Cambridge University Press. (120-155).
Ludden, D. (1999). An Agrarian History of South Asia. Cambridge: Cambridge University Press. (160-185). https://doi.org/10.1017/CHOL9780521364249
Maddison, A. (2003). The World Economy: Historical Statistics. Paris: OECD Publishing. (241-263). https://doi.org/10.1787/9789264104143-en
Naoroji, D. (1901). Poverty and Un-British Rule in India. London: Swan Sonnenschein. (1-50, 200-230).
Raychaudhuri, T. (1983). The Cambridge Economic History of India, Vol. 2. Cambridge: Cambridge University Press. (507-545). https://doi.org/10.1017/CHOL9780521226929
Sarkar, S. (1983). Modern India: 1885-1947. Delhi: Macmillan. (28-54).
Sen, A. (1981). Poverty and Famines: An Essay on Entitlement and Deprivation. Oxford: Oxford University Press. (154-178). https://doi.org/10.1093/0198284632.003.0010
Spear, P. (1965). A History of India, Vol. 2. Penguin Books. (92-115).
Tharoor, S. (2016). An Era of Darkness: The British Empire in India. New Delhi: Aleph Book Company. (1-40, 180-210).
Thorner, D. and Thorner, A. (1962). Land and Labour in India. Bombay: Asia Publishing House. (70-98).